International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

मूर्ति एवं प्रतीक–पूजा की दृष्टि से शिव का लिंग रूप में अर्चन : एक नूतन विमर्श

धीरेन्द्र सिंह
(शोध छात्र)
प्राचीन इतिहास संस्कृति, एवं पुरातत्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्राचीन प्रतीकों में सबसे अधिक विवादास्पद विषय लिंग–उपासना है। लिंग–उपासना कब से शुरू हुई, यह विवादास्पद है। कटनर ने अपनी पुस्तक में यह सिद्ध कर दिया है कि संसार के हर कोने में वासना तथा प्रजनन की प्रेरणा से लिंग–उपासना चालू थी। उनका कथन है कि आदिकाल के पुरुषों के इतिहास का पहला पन्ना खोलते ही सामने काम–उपासना आ जायेगी।[1] और ऐसी ही उपासना लिंग पूजा के रूप में थी। परब्रह्म तथा पुरूष–प्रकृति के प्रतीक शिव की उपासना हजारों वर्षो से चली आ रही है। संसार मे यह सबसे प्राचीन उपासना है। मृर्ति तथा प्रतीक–पूजा की दृष्टि से शिव का लिंग–रूप में अर्चन सबसे प्राचीन प्रातीकार्चन है। शिव–लिंग न तो प्रतिमा है और न मूर्ति। वह तो शुद्ध प्रतीक है। इस प्रतीक के विकास में भी शिव–उपासना के हजारो वर्ष लगे होंगे। शिव की अनेक रूपों में वैदिक काल में पूजा होती थी। ऋग्वेद में शिश्नवदेव का जिक्र है। 10वें अध्याय में 99.3 में इन्द्र की प्रशंसा है कि उसने 100 फाटकों वाले किले पर अधिकार कर बड़ी धनराशि प्राप्त की तथा 'शिश्वदेवों' का संहार किया। कुछ लोगों का कहना है कि शिश्नदेव से तात्पर्य उन लोगों से है जो लिंग पूजक थे सायण ने इसकी व्याख्या की है– 'शिश्नेन दिव्यति' – लिंग से खेलने वाले यानी व्यसनी लोग।''[2] भारत तथा ईरान–मिस्र आदि की सभ्यता एक सूत्र में पिरोयी हुई थी। अतएव एक देश का प्रतीक दूसरे देश में

पहुँच जाता था। उदाहरण के लिए आज से 2000 वर्ष पूर्व के पर्शियन–नरेश शिवलिंग उपासक थे। किन्तु इनके सिक्कों पर अग्नि तथा सूर्य आदि के प्रतीक मिलते हैं, जो इस बात के प्रमाण है कि ईरानी प्रभाव हमारे यहाँ पड़ा। ये सिक्के चौथी–पाँचवीं सदी के है।

किन्तु लिंग प्रतीक में शिव का पूजन तथा मूर्ति[3] के रूप में शिव का पूजन, इन दोनों के समय में काफी अन्तर अवश्य है। पर यह कहना भी गलत होगा कि प्रतिमा नामक वस्तु से लोग अपरिचित थे। प्रतिमा शब्द ऋग्वेद के दसवें मण्डल में आया है। और श्वेताश्वतर उपनिषद के अध्याय 4, श्लोक 9 में भी है। तथा कठोपनिषद् के अध्याय 2, मण्डल 3, श्लोक 9 में हैं। पर, देव–पूजा में प्रतिमा का उपयोग शब्द में शुरू हुआ। बनर्जी के कथनानुसार किसी न किसी प्रकार की देवः पूजा वैयाकरणाचार्य पाणिनी के समय में किसी न किसी रूप में प्रारम्भ हो गयी थी।[4] पाणिनी का समय, जो अभी तक विवादास्पद है, आज से 3000 से 900 वर्ष पूर्व के बीच में था। सबसे प्राचीन उपलब्ध मूर्तिया भी 3000 वर्ष पुरानी प्रतीत होती हैं। बनर्जी ने अपनी पुस्तक में एक शिव–पशपुति की मूर्ति का जिक्र किया है जिसमें मूर्ति के तीन सिर है, सिर पर सींग है। यह मूर्ति सिन्धु घाटी से प्राप्त एक मुहर पर बनी हुई है। मोहनजोदड़ों तथा हड़प्पा से प्राप्त मूर्ति (शिव) इससे भी अधिक पुरानी–लगभग 4000 वर्ष पहले की है। पर, उस समय पूजा के लिये ही मूर्ति बनती थी, यह कहना कठिन है। प्रो0 बनर्जी ने शिव की मूर्ति वाली कई प्राचीन मुहरों का जिक्र किया है[5] तथा पर्वत के रूप में पूजित शिव का जिक्र किया।[6] शिव की प्रतीकोपासना का उल्लेख किया है।[7] त्रिशूल का वर्णन किया है।[8] पादपेश्वर की प्रसिद्ध मूर्ति का परिचय दिया है।[9] प्रतिमाओं को सुसज्जित करने वाले आभूषणों का रोचक संवाद दिया है।[10] प्रतिमाओं की नाप–जोख दी है।[11] प्रतिमाओं की लम्बाई–ऊँचाई

बतलायी है।[12] बिहटा से प्राप्त मुहर उनकी समीक्षा अध्ययन की चीज है।[13] किन्तु इन सबमें वर्णित प्रतिमाएं प्रतीक भी 2000 वर्ष से अधिक पुराने नहीं है। पर, बनर्जी ने सिद्ध किया है कि शिव की उपासना महाभारत–काल में भी थी।[14] पाश्चात्य विद्वान्नें ने भी स्वीकार कर लिया है कि कम से कम 5000 वर्ष पूर्व महाभारत हुआ था। यानी शिव–पूजा उस समय थी और मूर्ति–पूजा के रूप में थी, यह भी स्पष्ट प्रतीत होता है। किन्तु मूर्ति–पूजा में केवल 'शिवलिंग' था या हाथ–पैर वाली मूर्ति, इसका पता नहीं चलता है। महाभारत–काल में शिव की लिंग–उपासना थी, यह तो प्रमाणित है। इसलिए यदि वैदिक युग को 10000 वर्ष पहले का मान लें तो 5000 वर्ष पूर्व के पौराणिक युग में शिव–लिंग–पूजा होता था। बाल्मीकि की रामायण कब लिखी गयी थी, यह हम नहीं कह सकते। अधिकांश लोग त्रेतायुग के राम को महाभारत के कृष्ण से बहुत पहले का अवतार या महापुरूष मानते हैं। राम ने लिंग–पूजन किया था, बाल्मीकि भी इसका वर्णन करते हैं। अतएव लिंग के रूप में शिव की उपासना काफी पुरानी है।

भारत में बौद्धकाल में, बौद्ध नरेशों के शासन में, हिन्दू धर्म के विस्तार तथा प्रचार में किसी प्रकार की बाधा नहीं थी। इसलिए सम्राट अशोक के समय से लेकर सम्राट हर्षवर्धन के युग तक बौद्ध तथा हिन्दू प्रतिमाएँ साथ–साथ निर्माण कला में उन्नति करती गयी।[15] भगवान बुद्ध की सभी प्रतिमाएँ मनुष्य की मूर्ति में हैं। उनके साथ धार्मिक प्रतीक सम्बद्ध हैं, जैसे हाथ की मुद्राएँ। ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्धकाल में तथा ईसवी सन् 1 से तीसरी शताब्दी तक गुप्त साम्राज्य के शासनकाल में भी, बौद्धों के प्रभाव से, शिव की भी हाथ–पैर वाली प्रतिमाएँ काफी बनीं। पर शिव की वास्तविक तथा प्राचीन उपासना लिंग के रूप में ही होती चली आयी है। प्रतीक

की कला भारत की अपनी खास देन है।[16] इस सम्बन्ध में, शिव–उपासना तथा शिवलिंग के सम्बन्ध में, पश्चिम के विद्वानों ने काफी प्रकाश डाला है।

कटनर ने लिखा है कि आदिकालीन मानव के जीवन का संघर्ष इतना विकट था कि उसकी सत्ता के लिए अधिक से अधिक सन्तानोत्पत्ति जरूरी थी।[17] वे आगे लिखते हैं– ''सभी प्राचीन धार्मिक सम्प्रदायों में जो अनेक प्रतीक प्रचलित थे, वे सभी या तो लिंग–उपासना से सम्बन्धित थे या सूर्य–उपासना से। ये दोनों उपासनाएँ (सम्प्रदाय) साथ–साथ चलती थीं..... भोजन के बाद मनुष्य की सबसे बलवान आवश्यकता कामवासना है..... हजारों वर्ष पूर्व, सबसे प्रारम्भिक पुजारी यह अनुभव करता था कि अपने देवता के साथ उसका प्रकट सम्बन्ध है। वह देवता चाहे ओसिरियस की मूर्ति हो, शिव की मूर्ति हो, आदोनिस या वेनस (कामदेवी), जुपिटर (गुरू) या प्रियापस (प्रजापति) की मूर्ति हो। स्मिथ ने भी अपनी पुस्तक में लिंग–उपासना के संगठित तथा व्यापक सम्प्रदायों का विवेचन करते हुए उसे कामवासना का परिणाम सिद्ध करने का प्रयास किया।[18] ब्रिटिश शब्दकोष में शक्तिपूजा की बड़े गलत ढंग से व्याख्या की गयी है। उससे यह स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि वास्तविक शक्ति–पूजन लिंग–योनि पूजन है जो वासना तथा प्रजनन का प्रतीक है।[19] इन सभी लेखकों ने 'लिंगवाद' शब्द भी गढ़ डाला है। लेखक फौरलोंग का कहना है कि खतना कराने की प्रथा, लिंग के अग्रभाग का चमड़ा कटाने की प्रथा, यहूदियों ने शुरू की। वह लिंग–उपासना ही थी। कटनर यह बात नहीं मानते। उनके अनुवार यह प्रथा अति प्राचीन मिस्र से शुरू हुई और केवल जननेन्द्रिय की सफाई के लिए चालू हुई थी। एकलिपट स्मिथ के अनुसार 'खतना' कराने का मतलब था 'विवाह' के लिए जननेन्द्रिय को उपयोग के लिए तैयार करना। हैनी[20] ने लिखा है कि यहूदी यानी ज्यू शब्द पहले 'इयू' लिखा जाता था। इ–पुरुष, यू–स्त्री,

यानी लिंग–योनि। लैम्प्रियर के कथनानुसार प्राचीन काल में देवी–देवताओं में लिंग–योनि के सम्बन्ध में कोई मर्यादा नहीं थी। प्रसिद्ध यूनानी देवी आदोनिस की माता का नाम मायरा देवी था। देवी अदोनिस के पिता साइप्रस टापू के नरेश सिनरास थे। मायरा सिनरास की ही बेटी थीं और उस बेटी से ही नरेश सिनारस ने देवी आदोनिस को उत्पन्न कराया था।

यूनान के प्रियापस देवता रोम में काम–देवता बनाकर पूजे जाने लगे। कामदेवी वेनस को रोमन लोग 'लिवरा', यानी माता कहते थे तथा कामदेव प्रियापस को 'लाइबर' यानी पिता कहते थे। मिस्र के लोगों की तरह रोमन लोगों ने भी मार्च के महीने को कामवासना का त्यौहार मानने का महीना बना लिया था। इस अवसर पर रथ पर रखकर एक बड़े लिंग का जुलूस निकालते थे। रास्ते भर रोमन नर–नारी इस लिंग का पूजन करते थे। इसे कामदेवी का त्यौहार कहते थे। रथ–यात्रा के दो–चार दिन बाद स्त्रियों का जुलूस निकलता था। वे अपनी छाती पर लकड़ी के लिंग रखकर चलती थीं। रोम में आइसिस देवी का लिंग–योनि–पूजन तथा भ्रष्टाचार का केन्द्र था। देवी रही[21] तथा शनिदेवी से उत्पन्न वेस्तावेदी का मन्दिर रोम में काफी प्रसिद्ध था। इस मन्दिर में सेविका के कार्य के लिए 10 वर्ष की उम्र से लड़कियाँ भर्ती की जाती थीं। 30 वर्ष की उम्र तक इनको अक्षत कुमारी रहकर मन्दिर में सेवा करनी पड़ती थी। यदि इन अक्षत कुमारियों में से किसी का ब्रह्मचर्य खण्डित हो जाता था तो वे दण्ड–स्वरूप जमीन में जिन्दा गाड़ दी जाती थी। कम से कम 1000 वर्ष तक यह प्रथा चलती रही। ईसवी सन् 39 में यह मन्दिर नष्ट कर दिया गया और यह सम्प्रदाय भी नष्ट हो गया। अनेक पश्चिमी विद्वान वेस्ता देवी के उपासकों को भारतीय तांत्रिक उपासना से सम्बन्धित उपासक मानते हैं।

ऐसा सम्बन्ध पीटरसन[22] तथा कटनर ने भी स्थापित किया है। पीटरसन के कथनानुसार भारतवर्ष के काल (महाकाल) देवता तथा काली (महाकली) देवी की उपासना मिस्र, यूनान तथा रोम पहुँची। भिन्न देशों में उनका नाम बदल गया। उनके कथनानुसार महाकाल–मोलोश, क्रोनोस, सैटर्न, प्लूटो, ताइफन देवता तथा महाकाली–हिकात, प्रोसर्पाइन, दियाना, देवी इत्यादि कहलाने लगीं।

कटनर कहते हैं कि तारिपस नगर में दियाना देवी की पूजा भारतीय महाकाली के समान पशुबलि आदि के साथ होती थी। मिस्र के ओसिरिस देव तथा आइसिस देवी भारतीय शिव–भवानी के समकक्ष थे।[23] देश–काल के अनुसार उपासना का प्रकार दूषित हो गया हो, पर उपासना को सिखाने वाले हमीं थे। इस प्रकार लिंग–उपासना भी मिस्री या यूनानी चीज नहीं थी। लिंगोपासना भारत से बाहर गया। और जिस समय लिंग की उपासना हमने बाहर वालों को सिखायी उसका सिद्धान्त तथा शास्त्र दूसरा ही था। बाद में अर्थ का अनर्थ हो गया। लिंग–उपासना ने संसार में इतना महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था कि दीर्घलिंगधारी प्रियापस देवता का प्रभाव हटाने मे ईसाई पादरी जब असफल होने लगे तो उन्होंने उसे ईसाई प्राचीन महापुरूषों में स्थान दे दिया। ईसाई धर्म के प्रचार के बाद भी काफी समय तक लिंगोपासना यूरोप में प्रचलित थी। ईसाई काल में ही बने हुए लिंग–प्रतीक फ्रांस तथा जर्मनी में बहुतायत से पाये जाते हैं। बेल्जियम राज्य का एक प्रदेश ऐन्टवर्प है। यहाँ पर लिंग–पूजक प्रियापस सम्प्रदाय 17वीं सदी तक वर्तमान था। जर्मनी में इस देवता को प्राइपे कहते थे और 12वीं सदी तक वहाँ लिंग–पूजा होती थी। यूरोप के आदि निवासी गाल, बाद में डेनमार्क से लेकर इंग्लैण्ड तक शासन करने वाले सैक्सन लोग तथा स्वीडन और नार्वे के लोग फ्रिक्को या फ्रिस्को नामक देवता की पूजा करते थे, जिनका बड़ा दीर्घ लिंग होता था। प्राचीन रूस में स्कौटजी नामक एक सम्प्रदाय था,

जिसका विश्वास था कि जो पुरूश खतना नहीं कराता उनकी मुक्ति नहीं होती। कुमारियाँ अपनी छाती कटवा देती थीं। इस सम्प्रदाय वालों ने एक अनुष्ठान किया जिसमें 1,44,000 ऐसी कुमारियों तथा कुमारों की आवश्यकता थी जो अपनी छाती कटवा लें तथा खतना करा लें। पर इतनी संख्या न मिलने के कारण वह अनुष्ठान असफल रहा।[24]

कौंगों में मन्दिरों पर लिंग तथा भग बना देते थे। मलाया अन्तरीप में एक देवता करायनालावें की पूजा होती थी जिनके शरीर में लिंग तथा योनि दोनों ही बने होते थे। उत्तरी अमेरिका में धार्मिक पर्वो पर वृषभ–नृत्य होता था जिसमें नाचने वाले अपने वस्त्रों में बड़े–बड़े लिंग छिपाये रहते थे। स्त्रियाँ झपटकर इन्हें खीच लेती थीं और अपने गाँव ले जाती थी।[25] श्रीमती स्टिवेंसान का कहना है कि संसार के हर कोने में लिंग–प्रतीक की पूजा होती थी।

मार के अनुसार 'जीवन में जीवन की शक्ति' की परिकल्पना से ही लिंग की उपासना प्रारम्भ हुई।[26] इसी भावना के कारण यूनानियों ने बसन्त ऋतु को लिंग–उपासना का ऋतु बना लिया था। यूनानी देवी अफोदाइत की पूजा में भद्दा से भद्दा कामुक कार्य होता था। यूनानी देवता डायोनिसस के उपासकों का एक गुप्त सम्प्रदाय था, जो भारत के एक वाममार्गी सम्प्रदाय की तरह मद्य–मैथुन का सेवन करने के बाद सूर्यास्त के उपरान्त देवता का जुलूस निकाला करता था, जिसमें 'लिंगदेव' की प्रशंसा में भजन गाये जाते थे। इटली के प्राचीन नगर पाम्पियाई के नाम से हम सभी परिचित हैं। नेपल्स नगर के दक्षिण–पूर्व 13 मील पर यह अति सुन्दर नगर बसा हुआ था। ईसवी सन् 79 में विसूवियस ज्वालामुखी के भयंकर विस्फोट से यह नगर समाप्त हो गया। इसके भग्नावशेष में ऐसे मंदिर मिले हैं जिनमें हमारे देश

के जगन्नाथपुरी के मन्दिर के समान दीवालों पर लिंग तथा उसकी क्रियाएँ खुदी हुई हैं।

श्रीमती ऐनी मेरी हुसेन तथा प्रो0 तुच्ची की इन खोजों से डा0 सम्पूर्णानन्द का यह सिद्धान्त पुष्ट होता है कि आर्यो का आदि–देश पंजाब–ईरान था।[27] और भी आर्य बाहर से आये होगें, पर 3000 वर्ष ईसा पूर्व यहाँ पर आर्य के इतर कोई सभ्यता थी, यह मानने का कारण नहीं प्रतीत होता। यह हो सकता है कि वह प्राचीन सभ्यता लिंग–पूजको की थी, जिसके विरोधी आर्य नरेश या देवता इन्द्र रहे होंगे। ऐसे लिंग–पूजक 'शिश्नदेवों' के साथ इन्द्र का झगड़ा हुआ होगा, जिसका उल्लेख ऋग्वेद में है। पर, लिंग–पूजन हमारे देश से ही बाहर गया, यह बात भी 'सभ्यताओं के मेले' की ऊपर लिखाी बातों से सिद्ध हो जाती है।

लिंग–पूजन वास्तव में आध्यात्मिक पूजन है। लिंग–पूजा मानसिक वस्तु है। ''लयं गच्छति इति लिंगम मनः, लिंग का अर्थ है मन। मन का आश्रय योनि है। योनि का अर्थ बुद्धि। अर्थात योनि (बुद्धि) में लिंग (मन) को लीन कर देना। यहीं लिंग–पूजन है। मन से बुद्धि में आओं। 'उर्ध्वमूल' का हमारे यहाँ बड़ा आध्यात्मिक महत्व है। लिंग–पूजन का असली अर्थ है बुद्धि में मन को लीन कर लेना। मोक्ष का यही सही मार्ग है।

इस प्रकार शिवपुराण ने लिंग को निराकार, निर्गुण, ब्रह्म का प्रतीक माना है। यदि हम इस विचार की ओर न जायें कि शिव ही ब्रह्म–स्वरूप तथा सकल और निष्फल है, विष्णु आदि क्यों नहीं, पर केवल इतनी सी बात ले कि शिव ब्रह्म–स्वरूप होने के कारण लिंग–रूप में पूजित होते हैं तो सिद्धान्त भी निश्चित हो जाता है कि हमारे देश से लिंग–पूजन इसी भावना को लेकर संसार में फैला था। बाद में लोगों ने अर्थ का जो भी अनर्थ लगा लिया हो, पर लिंग–पूजन की कल्पना से परे प्रारम्भ हुआ

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 15
November 2017

था। इसका जो गूढ़ अर्थ है, वही इसका आधार है। यही लिंग–पूजन कामवासना की व्याख्या है। जो लोग लिंग–प्रतीक का इसके अतिरिक्त कोई सांसारिक अर्थ लगाते हैं, वे गहरी भूल कर रहे हैं।

लिंग–प्रतीक का विषय इतना महत्वपूर्ण तथा रोचक है कि उस पर जितना भी लिखिए, एक–न–एक नयी बात निकलती जाती है। लिंग शिव–तत्व का प्रतीक है। इस शिव–तत्व से ही अक्षर तथा वाणी का प्रार्दुभाव हुआ। 'अकारादिविसर्गान्तं शिवत्त्वं'। इस शिव–तत्व की जानकारी आर्यो को बहुत प्राचीन काल से थी, यह सिद्ध हो चुका है। मोहनजोदड़ों तथा हड़प्पा की खुदाई ने भारत–भूमि पर प्रचलित सभ्यता की प्राचीनता सिद्ध कर दी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **H. Cutner- A Short History of Sex Worship- Page 6**
2. **J.N. Bannerjia-"The Development of Hindu Iconography" Calcutta University, 1941, Page 70**
3. मूर्ति, **Icon (Greek)- Eikon-A Figure representing a Deity or a saint in Painting etc.**
4. **149.** वही, पृष्ठ 44.
5. **150,** वही, पृष्ठ 44.
6. **151,** वही, पृष्ठ 44.
7. **152,** वही, पृष्ठ 44.
8. **153,** वही, पृष्ठ 44.
9. 154, वहीं पृष्ठ 115
10. **155,** वही, पृष्ठ 291—292
11. **156,** वही, पृष्ठ 595—599
12. **157,** वही, पृष्ठ 216—218
13. 158, वही, पृष्ठ 182
14. 159, वहीं, पृष्ठ 183
15. **160,** वही, पृष्ठ 185
16. **Edward Coldel- 'Animism"- Page 78**
17. **H. Cutner- A short history of sex worship- Page 2**
18. **Robertson Smith-"Religion of the Semites"- 3rd Edition, Page 456**
19. **Shakti Puja- Referred to in British Encyclopaedia- 14th Edition, Vol 17 Page 688**
20. **Lampriere.**
21. भारतीय तांत्रिक बीजमंत्र ''ह्री''

22. **Peterson in "Asiatic Researches".**

23. कटनर, पृष्ठ 89–91

24. कटनर, पृष्ठ 200–212

25. कटनर, पृष्ठ 199

26. **G. Sampsom Marr- Sex in Religion- 1936- Page 36**

27. डा0 सम्पूर्णानन्द–आर्यों का आदि देश